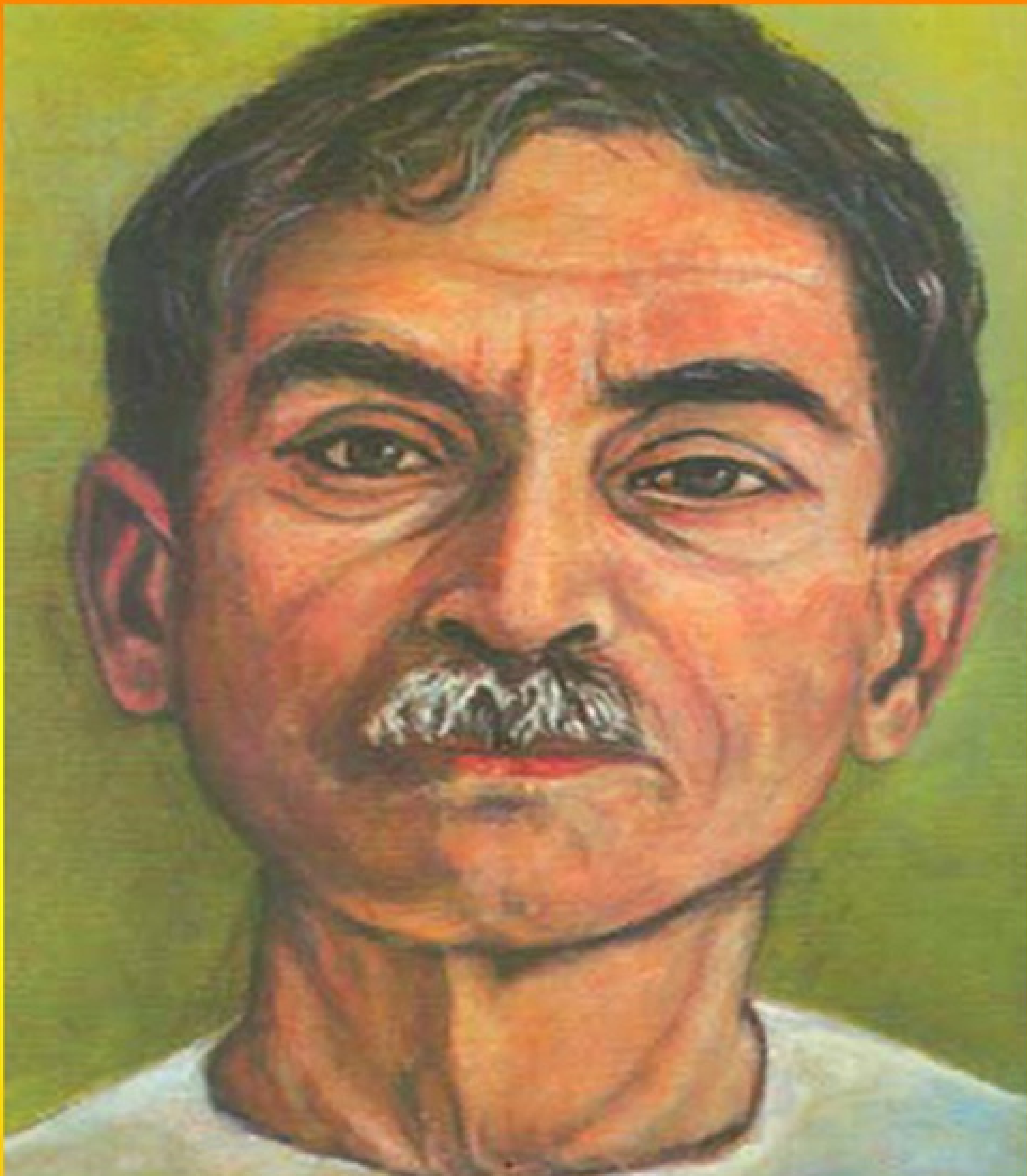


PREMCHAND

RAHSYA

रहस्य

प्रेमचंद

साँई ईपब्लिकेशंस

रहस्य

प्रेमचन्द

प्रकाशक: साँई ईपब्लिकेशंस

Rahsya

By Premchand

Published by: Sai ePublications

Digital edition produced by Sai ePublications

अनुक्रमणिका

१

विमल प्रकाश ने सेवाश्रम के द्वार पर पहुँचकर जेब से रूमाल निकाला और बालों पर पड़ी हुई गर्द साफ की, फिर उसी रूमाल से जूतों की गर्द झाड़ी और अन्दर दाखिल हुआ। सुबह को वह रोज टहलने जाता है और लौटती बार सेवाश्रम की देख-भाल भी कर लेता है। वह इस आश्रम का बानी भी है, और संचालक भी।

सेवाश्रम का काम शुरू हो गया था। अध्यापिकाएँ लड़कियों को पढ़ा रही थीं, माली फूलों की क्यारियों में पानी दे रहा था और एक दरजे की लड़कियाँ हरी-हरी घास पर दौड़ लगा रही थीं। विमल को लड़कियों की सेहत का बड़ा खयाल है।

विमल एक क्षण वहीं खड़ा प्रसन्न मन से लड़कियों की बाल-क्रीड़ा देखता रहा, फिर आकर दफ्तर में बैठ गया। क्लर्क ने कल की आयी हुई डाक उसके सामने रख दी। विमल ने सारे पत्र एक-एक करके खोले और सरसरी तौर पर पढक़र रख दिये, उसके मुख पर चिन्ता और निराशा का धूमिल रंग दौड़ गया। उसने धन के लिए समाचार-पत्रों में जो अपील निकाली थी, उसका कोई असर नहीं हुआ? कैसे यह संस्था चलेगी? लोग क्या इतने अनुदार हैं? वह तन-मन से इस काम में लगा हुआ है। उसके पास जो कुछ था वह सब उसने इस आश्रम को भेंट कर दी। अब लोग उससे और क्या चाहते हैं? क्या अब भी वह उनकी दया और विश्वास के योग्य नहीं है?

वह इसी चिन्ता में डूबा हुआ उठा और घर पर आकर सोचने लगा, यह संकट कैसे टाले? अभी साल का आधा भी नहीं गुजरा और आश्रम पर बारह हज़ार का कर्ज हो गया था। साल पूरा-पूरा होते वह बीस हज़ार तक पहुँचेगा। अगर

वह लड़कियों की फ़ीस एक-एक रुपया बढ़ा दे, तो पाँच सौ रुपये की आमदनी बढ़ सकती है। होस्टल की फीस दो-दो रुपये बढ़ा दे, तो पाँच सौ रुपये और आ सकते हैं। इस तरह वह आश्रम की आमदनी में बारह हज़ार सालाना की बढ़ती कर सकता है; लेकिन फिर उसका वह आदर्श कहाँ रहेगा कि गरीबों की लड़कियों को नाममात्र फीस लेकर ऊँची शिक्षा दी जाए! काश, उसे ऐसी अध्यापिकाओं की काफ़ी तादाद मिल जाती जो केवल गुजारे पर काम करतीं। क्या इतने बड़े देश में ऐसी दस-बीस पढ़ी-लिखी देवियाँ भी नहीं हैं? उसने कई बार अखबारों में यह जरूरत छपवाई थी, मगर आज तक किसी ने जवाब न दिया। अब फ़ीस बढ़ाने के सिवा उसके लिए कौन-सा रास्ता है?

इसी वक्त उसके द्वार के सामने एक ताँगा आकर रुका और एक महिला उतरकर बरामदे में आयी। विमल ने कमरे से बाहर निकलकर उनका स्वागत किया और उन्हें अन्दर ले जाकर एक कुरसी पर बैठा दिया। देवीजी रूपवती तो न थीं, पर उनके मुख पर शिष्टता और कुलीनता की आभा जरूर थी। औसत कद, कोमल गात, चम्पई रंग, प्रसन्न मुख, खूब बनी-सँवरी हुई; मगर उस बनाव-सँवार में ही जैसे अभाव की झलक थी। विमल के लिए यह कोई नई बात न थी। जब से उसने सेवाश्रम खोला था, भले घरों की देवियाँ अकसर उससे मिलने आती रहती थीं।

देवीजी ने कुरसी पर बैठते हुए कहा-पहले अपना नाम बता दूँ। मुझे मंजुला कहते हैं। मैंने कुछ दिन हुए, 'लीडर' में आपकी नोटिस देखी थी और उसी प्रयोजन से आपकी सेवा में आयी हूँ। यों तो आपसे मिलने का शौक बहुत दिनों से था; पर कोई अवसर न निकाल पाती थी, और बरबस आकर आपका कीमती समय नष्ट न करना चाहती थी। आपने जिस त्याग और तन्मयता से नारियों की सेवा की है, उसने आपके प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा पैदा कर दी है कि मैं उसे प्रकट करूँ तो शायद आप खुशामद समझें। मेरे मन में भी

इसी तरह की सेवा की इच्छा बहुत दिनों से है; पर जितना सोचती हूँ; उतना कर नहीं सकती। आपके प्रोत्साहन से सम्भव है; मैं भी कुछ कर सकूँ!

विमल मौन सेवकों में था। अपनी प्रशंसा उसके लिए सबसे कठिन परीक्षा थी। उसकी ठीक वही दशा हो जाती थी, जैसे कोई पानी में डुबकियाँ खा रहा हो। वह खुद किसी के मुँह पर उसकी तारीफ़ न करता था, इसलिए तारीफ़ के भूखे उसे तंगदिल समझते थे। वह पीठ के पीछे तारीफ़ करता था। हाँ, बुराइयाँ वह मुँह पर करता था और दूसरों से भी यही आशा रखता था।

उसने अपना उखड़ा हुआ पाँव जमाते हुए कहा-यह तो बहुत अच्छी बात होगी। आप शौक से आएँ। सेवाश्रम की दशा तो आपको मालूम होगी?

'मैं इस इरादे से यहाँ नहीं आयी हूँ।'

'यह मैं पहले ही समझ गया था। मेरी यह आशा न थी। यों ही कह दिया। अच्छा, आपका मकान यहीं है?

मंजुला देवी का घर लखनऊ में है। जालन्धर के कन्या-विद्यालय में शिक्षा पायी है। अंग्रेजी में अच्छी लियाकत है। घर के काम-धन्धे में भी कुशल हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनके हृदय में सेवा का उत्साह है। अगर ऐसी स्त्री सेवाश्रम का भार अपने ऊपर ले ले, तो क्या कहना!

मगर विमल के मन में एक प्रश्न उठा। पूछा-आपके पति भी आपके साथ रहेंगे?

साधारण-सा सवाल था; मगर मंजुला को नागवार लगा। बोली-जी नहीं। वह अपने घर रहेंगे। वह एक बैंक में नौकर हैं और अच्छा वेतन पाते हैं।

विमल के मन का प्रश्न और भी जटिल हो गया। जो आदमी अच्छा वेतन पाता है, उसकी पत्नी क्यों उससे अलग, काशी में रहना चाहती है?

केवल इतना मुँह से निकला-अच्छा!

मंजुला ने शायद उनके मन का भाव ताडक़र कहा-आपको यह कुछ अनोखी-सी बात लगती होगी, लेकिन क्या आपके ख्याल में शादी का आशय यह है कि स्त्री को पुरुष के दामन में छिपी रहना चाहिए?

विमल ने जोश के साथ कहा-'हर्गिज नहीं।'

'जब मैं अपनी जरूरतों को घटाकर सिफ़र तक पहुँचा सकती हूँ, तो किसी पर भार क्यों बनूँ?'

'बेशक!'

'हम दोनों में मतभेद है और उसके अनेक कारण हैं। मैं भक्ति और पूजा को मानव जीवन का सत्य समझती हूँ। वह इसे लचर समझते हैं, यहाँ तक कि ईश्वर में भी उनका विश्वास नहीं है। मैं हिन्दू संस्कृति को सबसे ऊँचा समझती हूँ। उन्हें हमारी संस्कृति में ऐब-ही-ऐब नजर आते हैं। ऐसे आदमी के साथ मेरा निबाह कैसे हो सकता है।'

विमल खुद भक्ति और पूजा को ढोंग समझते थे, और इतनी सी बात पर किसी स्त्री का पुरुष से अलग हो जाना उनकी समझ में न आया। उन्हें ऐसी कई मिसालें याद थीं, जहाँ स्त्रियों ने पति के विधर्मी हो जाने पर भी अपने व्रत का पालन किया। इस समस्या का व्यावहारिक अंग ही उनके सामने था। पूछा-उन्हें कोई आपत्ति तो न होगी?

मंजुला ने गर्व के साथ कहा-मैं ऐसी आपत्तियों की परवाह नहीं करती। अगर पुरुष स्वतन्त्र है, तो स्त्री भी स्वतन्त्र है।

फिर उसने नर्म होकर करुण स्वर में कहा-यों कहिए कि हम और वह तीन साल से अलग हैं। रहते हैं एक ही मकान में; लेकिन बोलते नहीं। जब कभी वह बीमार पड़े हैं, मैंने उनकी तीमारदारी की है। उन पर कोई संकट आया है, तो मैंने उनसे सच्ची सहानुभूति की है; लेकिन मैं मर भी जाऊँ तो उन्हें दु:ख न होगा। वह खुश ही होंगे कि गला छूट गया। वह मेरा पालन-पोषण करते हैं, इसलिए ......

उसका गला भर आया था। एक क्षण तक वह चुपचाप जमीन की ओर ताकती रही। फिर उसे भय हुआ कि कहीं विमल उसे हलका और ओछी न समझ रहा हो, जो अपने जीवन के गुप्त रहस्यों का ढिंढोरा पीटती फिरती है। इस भ्रम को विमल के मन से निकालना जरूरी था। उसने उन्हें यकीन दिलाया कि आज तक किसी ने उसके मुँह से ये शब्द नहीं सुने, यहाँ तक कि उसने अपने मन की व्यथा कभी अपनी माता से भी नहीं कही। विमल वह पहले व्यक्ति है जिनसे उसने ये बातें कहने का साहस किया है और इसका कारण यही है कि वह जानती है; उनके दिल में दर्द है और एक स्त्री की विवशता का अन्दाजा कर सकते हैं।

विमल ने लजाते हुए कहा-यह आपकी कृपा है, जो मेरे बारे में ऐसा खयाल करती हैं।

और उनके मन में मंजुला के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बहुत दिनों के बाद उसे एक देवी नजर आयी, जो सिद्धान्त के लिए इतना साहस कर सकती है। वह खुद मन-ही-मन समाज से विद्रोह करता रहता था। सेवाश्रम भी उनके मानसिक विद्रोह का ही फल था। ऐसी स्त्री के हाथों में वह सेवाश्रम बड़ी

खुशी से सौंप देगा। मंजुला इसके लिए तैयार होकर आयी थी।

२

मंजुला के जीवन में आत्मदान की मात्रा ही ज्यादा थी। देह को वह इस भावना की पूर्ति का साधन-मात्र समझती थी। दुनिया की बड़ी से बड़ी विभूति भी उसे शान्ति न दे सकती थी। मिस्टर मेहरा से उसे केवल इसलिए अरुचि थी कि वह भी साधारण प्राणियों की भाँति भोग-विलास के प्रेमी थे। जीवन उनके लिए इच्छाओं में बहने का नाम था। स्वार्थ की सिद्धि में नीति या धर्म की बाधा उनके लिए असहय थी। अगर उनमें कुछ उदारता होती और मंजुला से मतभेद होने पर भी वह उसकी भावनाओं का आदर करते और कम-से-कम मुख से ही उसमें सहयोग करते, तो मंजुला का जीवन सुखी होता; पर उस भले आदमी को पत्नी से जरा भी सहानुभूति न थी और वह हर एक अवसर पर उसके मार्ग में आकर खड़े हो जाते थे और मंजुला मन-ही-मन सिमटकर रह जाती थी। यहाँ तक कि उसकी भावनाएँ विकास का मार्ग न पाकर टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर जाने लगीं। अगर वह इस अभाव को कला का रूप दे सकती, तो उसकी आत्मा को उसमें शान्ति मिलती। जीवन में जो कुछ न मिला, उसे कला में पाकर वह प्रसन्न होती; मगर उसमें वह प्रतिभा, वह रचना-शक्ति न थी। और उसकी आत्मा पिंजड़े में बन्द पक्षी की भाँति हमेशा बेचैन रहती थी। उसका अहम्भाव इतना प्रच्छन्न हो गया था कि वह जीवन से विरक्त होकर बैठ सकती थी। वह अपने व्यक्तित्व को स्वतन्त्र और पृथक रखना चाहती थी। उसे इसमें गर्व और उल्लास होता था कि वह भी कुछ है। वह केवल किसी वृक्ष पर फैलने वाली और उसके सहारे जीने वाली बेल नहीं है। उसकी अपनी अलग हस्ती है, अपना अलग कार्यक्षेत्र है।

लेकिन यथार्थताओं के इस संसार में आकर उसे मालूम हुआ कि आत्मदान का जो आशय उसने समझ रखा था, वह सरासर ग़लत था। सेवाश्रम में ऐसे

लोग अकसर आते रहते थे, जिनसे थोड़ी-सी खुशामद करके बहुत कुछ सहायता ली जा सकती थी; लेकिन मंजुला का आत्माभिमान खुशामद कर किसी तरह राजी न होता था। उनके यश-गान से भरे हुए अभिनन्दन-पत्र पढऩा, उनके भवनों पर जाकर उन्हें सेवाश्रम के मुआयने का नेवता देना, या रेलवे स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करना, ये ऐसे काम थे जिनसे उसे हार्दिक घृणा होती थी; लेकिन सेवाश्रम के संचालन का भार उस पर था और उसे अपने मन को दबाकर और कर्तव्य का आदर्श सामने रखकर यह सारी नाजबरदारियाँ करनी पड़ती थीं, यद्यपि वह इन विद्रोही भावों को मक़दूर-भर छिपाती थी। पर जिस काम में मन न हो, वहाँ उल्लास और उत्साह कहाँ से आये? जिन समझौतों से घबराकर वह भागी थी, वह यहाँ और भी विकृत रूप में उसका पीछा कर रहे थे। उसके मन में कटुता आती जाती थी और एकाग्र-सेवा की धुन मिटती जाती थी।

इसके विरुद्ध वह विमल को देखती थी कि उसके चेहरे पर कभी शिकन नहीं आती। वही सहास्य मुख, वही उत्सर्ग से भरा हुआ उद्भाव, वही क्रियाशील तन्मयता। छोटे-से-छोटे काम के लिए हमेशा हाज़िर, सेवाश्रम की कोई कन्या या अध्यापिका बीमार पड़ जाए, विमल उसकी तीमारदारी के लिए मौजूद है। सहानुभूति का न जाने कितना बड़ा कोष उसके पास है कि उसमें जरा भी क्षति नहीं आती। उसके मन में किसी प्रकार का सन्देह या संशय नहीं है। उसने एक रास्ता पकड़ लिया है, ओर उस पर कदम बढ़ाता चला जा रहा है। उसे विश्वास है, इसी रास्ते से वह अपने ध्येय पर पहुँचेगा। राह में जो यात्री मिल जाते हैं, उन्हें अपना संगी बना लेता है। जो कलेवा लेकर चला है, वह संगियों को बाँटकर खाने में आनन्द पाता है। उसे नित्य परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, खुशामदें करनी पड़ती हैं, अपमान सहने पड़ते हैं, अयोग्य व्यक्तियों के सामने सिर झुकाना पड़ता है, भीख माँगनी पड़ती है; मगर उसे गम नहीं।

वह कभी निराश नहीं होता, कभी बुरा नहीं मानता। उसके अन्दर कोई ऐसी चीज है, जो हजारों ठोकरें खाने पर भी ज्यों-की-त्यों उछलती और दौड़ती रहती है। अध्यापिकाएँ अकसर साधारण-सी बातों पर शिकायतें करने लगती हैं, कभी-कभी रूठ जाती हैं और सेवाश्रम से विदा हो जाना चाहती हैं। अगर धोबन ने कपड़े खराब धोये या कहारिन ने उनकी साड़ी में दाग़ डाल दिये या चौकीदार ने उनके कुत्ते को दुत्कार दिया, या उनके कमरे में झाड़ू नहीं लगी, या ग्वाले ने दूध में पानी मिला दिया, तो इसमें सेवाश्रम के अधिकारियों का क्या दोष? मगर इन्हीं बातों पर यहाँ रोना-गाना मच जाता है, दुनिया सिर पर उठा ली जाती है। और विमल सेवक की भाँति अनुनय-विनय करके उनका गुस्सा ठण्डा करता है। उनकी घुड़कियाँ सुनता है और हँसकर रह जाता है। फल यह है कि अध्यापिकाओं की उस पर श्रद्धा होती जाती है। वह उसे अपना अफ़सर नहीं, अपना मित्र और बन्धु समझती हैं।

मगर मंजुला विमल से कुछ खिंची रहती है। कभी उससे कोई शिकायत नहीं करती, कभी उससे किसी मुआमले में सलाह नहीं लेती। यद्यपि वह दिल में समझती है कि जिस दुनियादारी को वह आत्मा का पतन कहकर उसे हेय समझती है, वह वास्तव में विकसित मानवता का ही रूप है, फिर भी अपने सिद्धान्त-प्रेम के अभिमान को तोड़ डालना उसके लिए कठिन है। और इस अभिमान के होते हुए भी विमल की विशुद्ध, नि:स्वार्थ व्यावहारिकता उसे जबरदस्ती अपनी ओर खींचती है। उसने साधारण मनुष्यों के विषय में अनुभव से मन में जो सीमाएँ खींच ली थीं, विमल उनसे ऊपर था। उसमें स्वार्थ का लेश भी नहीं है। अभिमान उसे छू भी नहीं गया है। उसके त्याग की कोई सीमा नहीं। मंजुला के आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य का यही सबसे ऊँचा आदर्श था; लेकिन विमल को उस आदर्श के समीप देखकर उसे एक प्रकार का हार का बोध होता था। आदर्श का महत्व इसी में है कि वह पहुँच

के बाहर हो। अगर वह साध्य हो जाए, तो आदर्श ही क्यों रहे? मंजुला अपनी आदर्श-भावना को और ऊँचा बनाकर इस विचार में सन्तोष पाना चाहती है कि विमल अभी उस आदर्श से बहुत दूर है; लेकिन विमल जैसे जबरन उनका श्रद्धापात्र बनता जाता है, वह अपने को प्रवाह में बहने से रोकने के लिए लकड़ी का सहारा लेती है; पर उसके पैरों के साथ वह लकड़ी भी उखड़ जाती है, और वह फिर किसी दूसरी रोक की तलाश करने लगती है। और अन्त में उसे यह सहारा मिल जाता है।

उसने अपनी तीव्र दृष्टि में देख लिया है कि विमल उसकी कारगुजारियों से सन्तुष्ट नहीं है। फिर वह उससे शिकायत क्यों नहीं करता, उससे जवाब क्यों नहीं माँगता? उसी तीव्र दृष्टि से उसने यह भी ताड़ लिया है कि विमल उसके रूप-रंग से अप्रभावित नहीं है। फिर यह शीतलता और उदासीनता क्यों? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह कपटी या कायर है? औरों से वह कितना खुलकर मिलता है, कितनी हमदर्दी से पेश आता है, तो मंजुला से वह क्यों दूर-दूर रहता है? क्यों उससे ऊपरी मन से बातें करता है? वह पहले दिन का निष्कपट व्यवहार कहाँ गया? क्या वह यह दिखाना चाहता है कि मंजुला की उसे बिलकुल परवा नहीं है या उससे केवल इसलिए नाराज है कि धनियों की चौखट पर सिर नहीं झुकाती? यह खुशामद उसे मुबारक रहे। मंजुला सेवा करेगी; पर अपने आत्माभिमान को अछूता रखकर।

एक दिन प्रात:काल मंजुला बगीचे में टहल रही थी कि विमल ने आकर उसे प्रणाम किया और उसे सूचना दी कि सेवाश्रम का वार्षिकोत्सव निकट आ रहा है। उसके लिए तैयारी करनी चाहिए।

मंजुला ने उदासीन भाव से पूछा-यह जलसा तो हर साल ही होता है।

विमल ने कहा-जी हाँ, हर साल; मगर अबकी ज्यादा समारोह से करने का

विचार है।

‘मेरे किये जो कुछ हो सकता है, वह मैं भी करूँगी, हालाँकि आप जानते हैं, मैं इस विषय में ज्यादा निपुण नहीं हूँ।’

‘इसकी सफलता का सारा भार आप ही के ऊपर है।’

‘मेरे ऊपर?’

‘जी हाँ, आप चाहें तो यह आश्रम कहीं-से-कहीं पहुँच जाए’

‘मेरे विषय में आपका अनुमान ग़लत है।’

विमल ने विश्वास-भरे स्वर में कहा-मेरा अनुमान गलत है या आपका अनुमान गलत है; यह तो जल्द ही मालूम हुआ जाता है।

आज यह पहली प्रेरणा थी, जो विमल ने मंजुला से की। जिस दिन से उसने सेवाश्रम उसके हाथ में सौंपा था, उस दिन से कभी इस विषय में कोई आदेश न दिया था। उसे कभी इसका साहस ही न हुआ। मुलाकातों में इधर-उधर की बातें होकर रह जातीं। शायद विमल समझता था कि मंजुला ने जो त्याग किया है, वह काफी से ज्यादा है। और उस पर अब और बोझ डालना जुल्म होगा। या शायद वह देख रहा था कि मंजुला का मन इस संस्था में रम जाए तो कुछ कहे। आज जो उसने विनय और आग्रह से भरा हुआ यह आदेश दिया तो मंजुला में एक नई स्फूर्ति दौड़ गयी। सेवाश्रम से ऐसा निजत्व उसे कभी न हुआ था। विमल से उसे जो दुर्भावनाएँ थीं, सब जैसे काई की तरह फट गईं और वह पूर्ण तन्मयता के साथ तैयारियों में लग गयी। अब तक वह क्यों आश्रम से इतनी उदासीन थी इस पर उसे आश्चर्य होने लगा। एक सप्ताह तक वह रात-दिन मेहमानों के आदर-सत्कार में व्यस्त रही। खाने तक

की फुरसत न मिलती। दोपहर का खाना तीसरे पहर मिलता। कोई मेहमान किसी गाड़ी से आता, कोई किसी गाड़ी से। अक्सर उसे रात को भी स्टेशन जाना पड़ता। उस पर तरह-तरह के करतबों का रिहर्सल भी कराना पड़ता। अपने भाषण की तैयारी अलग। इस साधना का पुरस्कार तो मिला, कि जलसा हर एक दृष्टि से सफल रहा और कई हज़ार की रकम चन्दे में मिल गयी। मगर जिस दिन मेहमान रुखसत हुए उसी दिन मंजुला को नये मेहमान का स्वागत करना पड़ा, जिसने तीन दिन तक उसे सिर न उठाने दिया। ऐसा बुखार उसे कभी न आया था। तीन ही दिन में ऐसी हो गयी, जैसे बरसों की बीमार हो।

विमल भी दौड़-धूप में लगा हुआ था। पहले तो कई दिन पण्डाल बनवाने और मेहमानों की दावत का इन्तजाम करने में लगा रहा। जलसा खत्म हो जाने पर जहाँ-जहाँ से जो सामान आये थे उन्हें सहेज-सहेजकर लौटाने की पड़ गयी। मंजुला को धन्यवाद देने भी न आ सका, किसी ने कहा जरूर कि देवी जी बीमार हैं, मगर उसने समझा, थकान से कुछ हरारत हो आयी होगी, ज्यादा परवा न की। लेकिन चौथे दिन खबर मिली कि बुखार अभी तक नहीं उतरा और बड़े जोर का हैं, तो वह बदहवास दौड़ा हुआ आया और अपराधी-भाव से उसके सामने खड़ा होकर बोला-अब कैसी तबीयत है? आपने मुझे बुला क्यों न लिया?

मंजुला को ऐसा जान पड़ा कि जैसे एकाएक बुखार हल्का हो गया है। सिर का दर्द भी कुछ शान्त हुआ जान पड़ा। लेटे-लेटे विवश आँखों से ताकती हुई बोली-बैठ जाइए, आप खड़े क्यों हैं? फिर मुझे भी उठना पड़ेगा।

विमल ने इस भाव से देखा मानो उसका बस होता, तो यह सारा ताप और दर्द खुद ले लेता। फिर आग्रह से बोला-नहीं-नहीं, आप लेटी रहें, मैं बैठ जाता

हूँ। इसका अपराधी मैं हूँ। मैंने ही आपको इस जहमत में डाला। मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपसे वह काम लिया जो मुझे खुद करना चाहिये था। मैं अभी जाकर डाक्टर को बुला लाता हूँ। क्या कहूँ, मुझे जरा भी खबर न हुई। फ़िजूल के कामों में ऐसा फँसा रहा....

और उसने पीठ फेरी ही थी कि मंजुला ने हाथ उठाकर मना करते हुए कहा-नहीं-नहीं; डाक्टर की कोई जरूरत नहीं। आप जरा भी परेशान न हों। मैं बिलकुल अच्छी हूँ। कल तक उठ बैठूँगी।

उसके मन में और कितनी ही बातें उठीं, मगर उसने ओठ बन्द कर लिये। इस आवेश में वह न जाने क्या-क्या बक जाएगी। अभी तक विमल ने शायद उसे देवी समझकर उसके सामने सिर झुकाया है। उससे दूर अवश्य रहा है; मगर इसलिए नहीं कि वह समीप आना नहीं चाहता, बल्कि इसलिए कि अपनी सरलता में, अपनी साधना में, उसके समीप आने में झिझकता है, कि कहीं देवी को नागवार न गुजरे। विमल ने अपने मन में उसे जिस ऊँचे आसन पर बैठा दिया है उससे नीचे वह न आएगी। विमल को मालूम नहीं, वह कितना सात्विक, कितना विशालात्मा पुरुष है। ऐसे आदमी की स्मृति में हमेशा के लिए एक आकाश में उडऩे वाली, निष्कलंक, निष्कपट, सती की धुँधली छाया छोड़ जाना कितना बड़ा मोह है!

उसने विनोद-भाव से कहा-हाँ; क्यों नहीं; क्योंकि आप तो मनुष्य हैं और मैं काठ की पुतली।

‘नहीं आप देवी हैं।’

‘नहीं, एक नादान औरत।’

'आपने जो कुछ कर दिखाया, वह मैं सौ जन्म लेकर भी न कर सकता था।'

'उसका कारण भी आपने सोचा? यह स्त्री की विजय नहीं, उसकी हार है। अगर इन दोषों के साथ मैं स्त्री न होकर पुरुष होती, तो शायद इसकी चौथाई सफलता भी न मिलती। यह मेरी जीत नहीं, मेरी नारीत्व की जीत है। रूप तो असार वस्तु है, जिसकी कोई हक़ीकत नहीं। वह धोखा है, फरेब है, दुर्बलताओं के छिपाने का परदा मात्र!'

विमल ने आवेश में कहा-यह आप क्या कहती हैं मंजुला देवी! रूप संसार का सबसे बड़ा सत्य है। रूप को भयंकर समझकर हमारे महात्माओं और पण्डितों ने दुनिया के साथ घोर अन्याय किया है।

मंजुला की सुन्दर छवि गर्व के प्रकाश से चमक उठी। रूप को असत्य समझने के प्रयास में सदैव असफल रही थी। और अपनी निष्ठा और भक्ति से मानो अपने रूप का प्रायश्चित कर रही थी। उसी रूप के इस समर्थन ने एक क्षण के लिए उसे मुग्ध कर दिया मगर वह संभलकर बोली-आप धोखे में हैं, विमल बाबू, मुझे क्षमा कीजिएगा; मगर यह रूप की उपासना आपमें कोई नई बात नहीं है। मरदों ने हमेशा रूप की उपासना की है। थोड़े पण्डितों या महात्माओं ने चाहे रूप की निन्दा की हो, पर मरदों ने प्राय: रूपासक्ति ही का प्रमाण दिया है। यहाँ तक कि रूप के लिए धर्म की परवा नहीं की और उन पण्डितों और महात्माओं ने भी जबान या कलम से चाहे रूप के विरुद्ध विष उगला हो; लेकिन अन्त:करण में वे भी उसकी पूजा करते हैं। जब कभी रूप ने उनकी परीक्षा की है उनकी तपस्या पर विजय पायी है। फिर भी जो असत्य है, वह असत्य ही रहेगा। रूप का आकर्षण केवल बाहरी आँखों के लिए है। ज्ञानियों की निगाह में उसका कोई मूल्य नहीं। कम-से-कम आपके मुख से मैं रूप का बखान नहीं सुनना चाहती, क्योंकि मैं आपको देवतुल्य

समझती हूँ और दिल से आप पर श्रद्धा रखती हूँ।

विमल विक्षिप्त-सा जमीन की तरफ ताकता रहा और बराबर ताकता ही चला गया; जैसे वह मूर्छावस्था में हो। फिर चौंककर उठा और अपराधियों की भाँति सिर झुकाये, सन्दिग्ध भाव से कदम उठाता हुआ कमरे से निकल गया।

और मंजुला निश्चिन्त बैठी रही।

३

उस दिन से एकाएक विमल का सारा उत्साह और कर्मण्यता जैसे ठण्डी पड़ गयी। जैसे उसमें अब अपना मुँह दिखलाने की हिम्मत नहीं है। मानों इस रहस्य का पर्दा खुल गया है और चारों तरफ उसकी हँसी उड़ रही है। वह अब सेवाश्रम में बहुत कम आता है और आता भी है, तो अध्यापिकाओं से कुछ बातचीत नहीं करता। सबसे जैसे मुँह चुराता फिरता है। मंजुला को मिलने का कोई अवसर नहीं देता, और जब मंजुला हारकर उसके घर जाती है, तो कहला देता है, घर में नहीं है, हालाँकि वह घर में छिपा बैठा रहता है।

और मंजुला उसके मनोहरस्य को समझने में असमर्थ है। विमल ने अपनी साधना और सद्भावना से उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं। वह एक नारी की गहरी अन्तर्दृष्टि से देख रही है कि विमल भी उसका उपासक बन बैठा है ओर जरा भी प्रोत्साहन पाने पर अपने को उसके चरणों पर डाल देगा। उसने बरसों से जो जिन्दगी बसर की है उसमें प्रेम नहीं है सेवा और कर्तव्य का दामन पकडक़र भी उसे अपनी अपूर्णता का ज्ञान होता रहता है। जिस पुरुष में उसका प्रेम नहीं है, न विश्वास है, उसके प्रति वह किसी तरह का नैतिक या धार्मिक बन्धन नहीं स्वीकार करती। वह अपने को स्वच्छन्द समझती है। चाहे समाज उसकी स्वच्छन्दता न माने, पर उसकी आत्मा इस विषय में अपने को आजाद समझती है; मगर विमल की नज़रों में आदर और भक्ति पाने का मोह उसमें इतना प्रबल है कि वह उस स्वच्छन्दता की भावना को सिर नहीं उठाने देती। वह विमल से संसर्ग की घनिष्ठता तो चाहती है; पर अपने आत्माभिमान की रक्षा करते हुए। इसके साथ ही विमल के पवित्र और निर्मल जीवन में वह दाग नहीं लगाना चाहती। उसने सोचा था, विमल को दवा का हल्का-सा घूँट पिलाकर वह स्वस्थ कर

देगी। वह स्वस्थ होकर उसके मनोद्यान में आएगा, फूलों को देखकर प्रसन्न होगा, हरी-हरी दूब पर लेटेगा, पक्षियों का गाना सुनेगा। उससे वह इतना ही संसर्ग चाहती थी। दीपक के प्रकाश का आनन्द तो दीपक से दूर रहकर ही लिया जा सकता। उसे स्पर्श करके तो वह अपने को जला सकता है; मगर अब उसे मालूम हुआ कि दवा की वह घूँट बाधा को हरने के बदले एक दूसरा रोग पैदा कर गयी। विमल में निर्लेप होकर रहने की शक्ति न थी। वह जिस चीज की ओर झुकता था, तन-मन से उसी का हो जाता था और जब खिंचता था, तो मानो नाता ही तोड़ लेता था। उसके इस नये व्यवहार को मंजुला अपना अपमान समझती है। और मन यहाँ से उचाट हो जाता है।

आखिर एक दिन उसने विमल को पकड़ ही लिया था। मंजुला जानती थी, विमल रोज दरिया किनारे सैर करने जाता है। एक दिन उसने वहीं जा घेरा और अपना इस्तीफा उसके हाथ में रख दिया।

विमल के गले में जैसे फाँसी पड़ गयी। जमीन की ओर ताकता हुआ बोला- ऐसा क्यों?

'इसलिए कि मैं अपने को इस काम के योग्य नहीं पाती।'

'संस्था तो खूब चल रही है?'

'फिर भी मैं यहाँ रहना नहीं चाहती।'

'मुझसे कोई अपराध हुआ है?'

'आप अपने दिल से पूछिए।'

विमल ने इस वाक्य का वह आशय समझ लिया, जो मंजुला की कल्पना से

भी कोसों दूर था। उसके मुख का रंग उड़ गया, जैसे रक्त की गति बन्द हो गयी हो। इसका उसके पास कोई जवाब न था। ऐसा फैसला था जिसकी कहीं अपील न थी।

आहत स्वर में बोला-जैसी आपकी इच्छा। मुझ पर दया कीजिए।

मंजुला ने आद्र्र होकर कहा-तो मैं चली जाऊँ?

'जैसे आपकी इच्छा!'

और वह जैसे गले का फन्दा छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ। मंजुला करुण नेत्रों से उसे देखती रही, मानो सामने कोई नौका डूबी जा रही हो।

४

चाबुक खाकर विमल फिर सेवाश्रम की गाड़ी में जुत गया। कह दिया गया मंजुला देवी के पति बीमार थे। चली गयीं। काम-काजी आदमी प्रेम का रोग नहीं पालता, उसे कविता करने और प्रेम-पत्र लिखने और ठण्डी आहें भरने की कहाँ फुरसत? उसके सामने तो कर्तव्य है, प्रगति की इच्छा है, आदर्श है। विमल भी काम-धन्धे में लग गया। हाँ, कभी-कभी एकान्त में मंजुला की याद आ जाती थी और लज्जा से उसका मस्तक आप-ही-आप झुक जाता था। उसे हमेशा के लिए सबक मिल गया था। ऐसी सती-साध्वी के प्रति उसने कितनी बेहूदगी की!

तीन साल गुजर गये थे। गर्मियों के दिन थे। विमल अबकी मंसूरी की सैर करने गया हुआ था और एक होस्टल में ठहरा था। एक दिन बैण्ड स्टैण्ड के समीप खड़ा बैण्ड सुन रहा था कि बगल की एक बेंच पर मंजुला बैठी नजर आयी, आभूषणों और रंगों से जगमगाती हुई। उसके पास ही एक युवक कोट-

पैण्ट पहने बैठा हुआ था। दोनो मुस्करा-मुस्कराकर बातें कर रहे थे। दोनों के चेहरे खिले, दोनों प्रेम के नशे में मस्त। विमल के मन में सवाल उठा, यह युवक कौन है? मंजुला का पति नहीं हो सकता। या संभव है, उसका पति ही हो। दम्पति में अब मेल हो गया हो। उसे मंजुला के सामने जाने का साहस न हुआ।

दूसरे दिन वह एक अँगरेजी तमाशा देखने सिनेमा हॉल गया था। इण्टरवल में बाहर निकला तो केफे में फिर मंजुला दिखायी दी। सिर से पाँव तक अँग्रेजी पहनावे में। वही कल वाला युवक आज भी उसके साथ था। आज विमल से जब्त न हो सका। इसके पहले कि वह मन में कुछ निश्चय कर सके, वह मंजुला के सामने खड़ा था।

मंजुला उसे देखते ही सन्नाटे में आ गयी। मुँह पर हवाइयाँ उडऩे लगीं, मगर एक ही क्षण में उसने अपने आप को सँभाल लिया और मुस्कराकर बोली-हल्लो, विमल बाबू! आप यहाँ कैसे?

और उसने उस नवयुवक से विमल का परिचय कराया-आप महात्मा पुरुष हैं, काशी के सेवाश्रम के संचालक और यह मेरे मित्र मि० खन्ना हैं जो अभी हाल में इंग्लैंड से आयी०सी०एफ० होकर आये हैं।

दोनों आदमियों ने हाथ मिलाए।

मंजुला ने पूछा-सेवाश्रम तो खूब चल रहा है। मैंने उसकी वार्षिक रिपोर्ट पत्रों में पढ़ी थी। आप यहाँ कहाँ ठहरे हुए हैं?

विमल ने अपने होटल का नाम बतलाया।

खेल फिर शुरू हो गया। खन्ना ने कहा-खेल शुरू हो गया, चलो अन्दर चलें।

मंजुला ने कहा-तुम जाकर देखो, मैं जरा मिस्टर विमल से बातें करूँगी।

खन्ना ने विमल को जलती हुई आँखों से देखा और अकड़ता हुआ अन्दर चला गया। मंजुला और विमल बाहर आकर हरी-हरी घास पर बैठ गये। विमल का हृदय गर्व से फूला हुआ था। आशामय उल्लास की चाँदनी-सी हृदय पर छिटकी हुई थी।

मंजुला ने गम्भीर स्वर में पूछा-आपको मेरी याद काहे को आयी होगी। कई बार इच्छा हुई कि आपको पत्र लिखूँ, लेकिन संकोच के मारे न लिख सकी। आप मजे में तो थे।

विमल को उसका यह उलाहना बुरा लगा। कहाँ अभी हास्य-विनोद में मग्न थी, कहाँ उसे देखते ही गम्भीरता की पुतली बन गयी। रूखे स्वर में बोला-हाँ, बहुत अच्छी तरह था। आप तो आराम से थीं?

मंजुला आद्र्र कण्ठ से बोली-मेरे भाग्य में तो आराम लिखा ही नहीं है, मिस्टर विमल। पिछले साल पति का देहान्त हो गया। उन्होंने जितनी जायदाद छोड़ी उससे ज्यादा कर्ज छोड़ा। इन्हीं उलझनों में पड़ी रही। स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। डाक्टरों ने पहाड़ पर रहने की सलाह दी। तब से यहीं पड़ी हुई हूँ।

‘आपने मुझे खत तक न लिखा।’

‘आपके सिर यों ही क्या कम बोझ है कि मैं अपनी चिन्ताओं का भार भी रख देती?’

‘फिर भी एक मित्र के नाते मुझे खबर तो देनी ही थी।’

मंजुला ने स्वर में श्रद्धा भरकर कहा-आपका काम इन झगड़ों में पडऩा नहीं है, विमल बाबू। आपको ईश्वर ने सेवा और त्याग के लिए रचा है। वही आपका क्षेत्र है। मैं जानती हूँ, आपकी मुझ पर दयादृष्टि है। मैं कह नहीं सकती, मेरी नज़रों में उसका कितना मूल्य है। जिसे कभी दया और प्रेम न मिला हो वह इनकी ओर लपके तो क्षमा के योग्य है। आप समझ सकते हैं, उनका परित्याग करके मैंने कितनी बड़ी कुर्बानी की है; मगर मैंने इसी को अपना कर्तव्य समझा। मैं सब कुछ सह लूँगी; पर आपको देवत्व के ऊँचे आसन से नीचे न गिराऊँगी। आप ज्ञानी हैं, संसार के सुख कितने अनित्य हैं, आप खूब जानते हैं। इनके प्रलोभन में न आइए। आप मनुष्य हैं। आप में भी इच्छाएँ हैं; वासनाएँ हैं; लेकिन इच्छाओं पर विजय पाकर ही आपने यह ऊँचा पद पाया है। उसकी रक्षा कीजिए। और अध्यात्म ही आपकी मदद कर सकता है। उसकी साधना से आपका जीवन सात्विक होगा और मन पवित्र होगा।

विमल ने अभी-अभी मंजुला को आमोद-प्रमोद में क्रीड़ा करते देखा था। खन्ना से उसका सम्बन्ध किस तरह का है, यह भी वह समझ रहा था। फिर भी इस उपदेश में उसे सच्ची सहानुभूति का सन्देश मिला। विलासिनी मंजुला उसे देवी के रूप में नजर आयी। उसके भीतर का अहंकार उसकी लोलुपता से बलवान् था। सद्भावना से भरकर बोला-देवीजी, आपने जिन शब्दों से मेरा सम्मान किया है उनके लिए आपका एहसानमन्द हूँ। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

मंजुला ने उठते हुए कहा-आपकी कृपा-दृष्टि काफी है।

उसी वक्त खन्ना सिनेमा-हॉल से बाहर आता दिखाई दिया।

लेखक परिचय

प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई सन् १८८० को बनारस शहर से चार मील दूर समही गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम अजायब राय था। वह डाकखाने में मामूली नौकर के तौर पर काम करते थे। आपके पिता ने केवल १५ साल की आयू में आपका विवाह करा दिया। विवाह के एक साल बाद ही पिताजी का देहान्त हो गया। अपनी गरीबी से लड़ते हुए प्रेमचन्द ने अपनी पढ़ाई मैट्रिक तक पहुंचाई। जीवन के आरंभ में आप अपने गाँव से दूर बनारस पढ़ने के लिए नंगे पाँव जाया करते थे। तेरह वर्ष की उम्र में से ही प्रेमचन्द ने लिखना आरंभ कर दिया था। शुरु में आपने कुछ नाटक लिखे फिर बाद में उर्दू में उपन्यास लिखना आरंभ किया। इस तरह आपका साहित्यिक सफर शुरु हुआ जो मरते दम तक साथ - साथ रहा। सन् १९३६ ई० में प्रेमचन्द बीमार रहने लगे। अपने इस बीमार काल में ही आपने "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना में सहयोग दिया। आर्थिक कष्टों तथा इलाज ठीक से न कराये जाने के कारण ८ अक्टूबर १९३६ में आपका देहान्त हो गया। और इस तरह वह दीप सदा के लिए बुझ गया जिसने अपनी जीवन की बत्ती को कण-कण जलाकर भारतीयों का पथ आलोकित किया।

Rahsya

Digital edition produced & published by
Sai ePublications